॥ श्रीहरिः ॥

464

गीता-ज्ञान-प्रवेशिका



गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

स्वामी रामसुखदास

॥ श्रीहरिः ॥

गीता-ज्ञान-प्रवेशिका

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

स्वामी रामसुखदास

464 Gita Gyan_Section_1_Front

॥ श्रीहरि: ॥

तृतीय संस्करणका नम्र निवेदन

श्रीमद्भगवद्गीता सच्चिदानन्दघन सर्वलोकमहेश्वर प्रेमस्वरूप भक्तवत्सल भक्तभक्तिमान् स्वयं भगवान्की दिव्य वाणी है। भारतीय अध्यात्म-जगत्में तो गीताका अद्वितीय स्थान है ही, अखिल भूमण्डलके विद्वानों तथा विचारकोंके हृदयोंपर भी गीताका अनुपम प्रभाव है। विशेषता यह है कि गीतामें सभी परमार्थ-पथिक महानुभावों एवं लोकपथ-प्रदर्शक आचार्योंको अपने सिद्धान्तका समर्थन दृष्टिगोचर होता है। यहाँतक कि राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रमें काम करनेवाले भी गीतासे विशुद्ध प्रकाश प्राप्त करते हैं। ऐसी महान विश्वकल्याणकारिणी गीताके अगाध रसज्ञान सागरमें जितना गोता लगाया जाय, उतना ही सौभाग्य है और गोता लगानेवालोंको उतने ही अमूल्य रत्न उपलब्ध होते हैं।

हमारे श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज भी गीताज्ञानार्णवमें गोता लगानेवाले हैं और नित्य लगाते ही रहते हैं। इनको गीताने बहुमूल्य अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं और अब भी ये नये-नये रत्नोंके लिये प्रयत्नशील हैं। इनकी विशेषता यह है कि ये सर्वजनहिताय उनका यथायोग्य परंतु मुक्तहस्तसे वितरण भी करते रहते हैं। इनकी इस सहज उदारताका प्रमाण है—प्राय: बारहों महीने प्रतिदिन अधिकारियोंमें गीताके गुह्य, गुह्यतर, गुह्यतम सिद्धान्तोंका प्रकाश करना और सरल हृदयके भावुकोंको मधुर गीताप्रसादका सरल भाषामें स्वाद चखाते रहना। यही इनका काम है—गीतासे लेना और गीतागायकके सेवार्थ गीताभक्तोंको देते रहना।

यह 'गीता-ज्ञान-प्रवेशिका' भी श्रीस्वामीजीका सरल मधुर गीताप्रसाद है, जो गीता-शिक्षार्थियोंको गीता समझनेकी सुविधाके लिये प्रस्तुत किया गया है। इसमें बड़ी सरलताके साथ श्रीमद्भगवद्गीताके प्रत्येक अध्यायमें आये हुए प्रधान विषयोंका संक्षिप्त वर्णन किया गया है। आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय सखा अर्जुनके प्रति किस अध्यायके किन श्लोकोंमें किस-किस विषयपर क्या उपदेश किया है—इस पुस्तकमें इसपर तथा अन्यान्य आवश्यक उपयोगी

विषयोंपर संक्षेपमें पूरा प्रकाश डाला गया है। भाषा और लिखनेकी शैली ऐसी है कि जिससे गीताध्ययनका आरम्भ करनेवाले नवीन जिज्ञासुजन भी अच्छी तरह समझकर हृदयंगम कर सकें।

श्रीस्वामीजीके इस कल्याणकार्यसे सभी लोग यथायोग्य लाभ उठावें—यह मेरा नम्र निवेदन है।

आश्विन शुक्ल १। २०२५ वि० —हनुमानप्रसाद पोद्दार

(नवरात्रारम्भ)

आठवें संस्करणका नम्र निवेदन

इस पुस्तकका प्रथम संस्करण 'गीताका विषय-दिग्दर्शन' नामसे, तृतीय संस्करण 'गीता-ज्ञान-प्रवेशिका' नामसे और चतुर्थ संस्करण 'गीता-परिचय' नामसे प्रकाशित किया गया था। अब इस पुस्तकका आठवाँ संस्करण पुनः 'गीता-ज्ञान-प्रवेशिका' नामसे प्रकाशित किया जा रहा है। परमश्रद्धेय स्वामीजीने इस नवीन संस्करणमें आवश्यक परिवर्तन और परिवर्धन करके पुस्तककी उपयोगिताको और बढ़ा दिया है। आशा है, गीताके विद्यार्थी इस पुस्तकसे अधिकाधिक लाभान्वित होंगे।

गीताकी पादानुक्रमणिका और शब्दानुक्रमणिका—ये दो विषय यद्यपि परमश्रद्धेय स्वामीजीके लिखे हुए नहीं हैं, तथापि उपयोगी समझकर इस पुस्तकमें दे दिये हैं।

गीता-सम्बन्धी व्याकरण और छन्दोंका विषय 'गीता-दर्पण' नामक ग्रन्थमें विस्तारसे दिया गया है; अतः उसे इस पुस्तकमें नहीं लिया गया है।

गीताके मार्मिक भावोंको जाननेके लिये जिज्ञासुओंको परमश्रद्धेय स्वामीजीके दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ—'साधक-संजीवनी' 'गीताकी टीका' तथा 'गीता-दर्पण' का भी अवश्य अध्ययन-मनन करना चाहिये।

—प्रकाशक

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

विषय-सूची

प्रपन्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

श्रीभगवान्‌की वाङ्मयी मूर्ति—गीता

वक्त्राणि पञ्च जानीहि पञ्चाध्यायाननुक्रमात्।
दशाध्याया भुजाश्चैकमुदरं द्वे पदाम्बुजे॥
एवमष्टादशाध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरीश्वरी।
जानीहि ज्ञानमात्रेण महापातकनाशिनी॥

गीताके अठारह नाम

गीता गङ्गा च गायत्री सीता सत्या सरस्वती।
ब्रह्मविद्या ब्रह्मवल्ली त्रिसन्ध्या मुक्तिगेहिनी॥
अर्धमात्रा चिदानन्दा भवघ्नी भयनाशिनी।
वेदत्रयी परानन्ता तत्त्वार्थज्ञानमञ्जरी॥
इत्येतानि जपेन्नित्यं नरो निश्चलमानसः।
ज्ञानसिद्धिं लभेच्छीघ्रं तथान्ते परमं पदम्॥

।। श्रीहरिः ।।

गीता-ज्ञान-प्रवेशिका

१. गीताके सम्बन्धमें कुछ ज्ञातव्य बातें

१—गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण हैं, श्रोता उनके प्रिय सखा अर्जुन हैं, संकलनकर्ता महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी हैं और लेखक बुद्धिप्रदायक श्रीगणेशजी हैं। भगवान् श्रीकृष्णने अपने उपदेशमें प्रमाणरूपसे बहुत-सी श्रुतियाँ कही थीं, उनको तथा जो उन्होंने गद्यमें कहा था उसे भी श्रीव्यासजीने स्वयं श्लोकबद्ध कर लिया तथा अर्जुन, सञ्जय और धृतराष्ट्रके वचनोंको भी अपनी भाषामें श्लोकबद्ध कर लिया। वही श्रीकृष्णार्जुनसंवादके रूपमें अठारह अध्यायोंमें विभक्त सात सौ श्लोकोंका यह ग्रन्थरत्न— श्रीमद्भगवद्गीता है।

२—गीता साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निकली हुई दिव्य वाणी है। जैसे प्रमुख स्मृतियाँ अठारह ही हैं, पुराण भी अठारह ही हैं, भागवतके श्लोक भी अठारह हजार ही हैं, महाभारतके पर्व भी अठारह ही हैं, कौरव-पाण्डवोंकी सेना भी अठारह अक्षौहिणी ही थी, युद्ध भी अठारह दिन ही हुआ, वैसे ही गीतामें भी अठारह अध्याय हैं।

यदि कहें कि 'गीतामें भगवान्‌का उपदेश तो दूसरे अध्यायसे प्रारम्भ हुआ है, तब पहले अध्यायको गीतामें क्यों शामिल किया गया?' तो इसका उत्तर यह है कि पहले अध्यायमें भी भगवान्‌के वचन हैं—

उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति॥

(१। २५ का उत्तरार्ध)

अगर ये वचन नहीं होते तो गीताका उपदेश ही नहीं होता। गीतोपदेशके होनेमें भगवान्‌की अतिशय कृपा संनिहित है। अन्यथा अर्जुनने तो रथ खड़ा करनेको कहा था, भगवान् बीचमें कहीं भी रथको खड़ा कर देते तो गीता प्रारम्भ ही नहीं होती। किंतु भगवान्‌ने रथको खड़ा भी किया पितामह भीष्म और द्रोणाचार्यके सम्मुख तथा अर्जुनसे कहा—'इन कौरवोंको देख।' भगवान् यदि उक्त श्लोकमें '**कुरून्**' न कहकर '**उवाच पार्थ पश्यैतान् धार्तराष्ट्रान् समानिति**' इस प्रकार धृतराष्ट्रके पुत्रोंको देखनेको कहते तो भी अर्जुनको शोक नहीं होता और गीताका उपदेश आरम्भ नहीं होता; क्योंकि युद्धके इच्छुक धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे तो युद्ध करनेको वह तैयार था ही।

दूसरी बात यह है कि पहले अध्यायमें इकतीसवेंसे चौवालीसवेंतक अर्जुनका जो कथन है, उसका भगवान्‌ने अगले अध्यायोंमें समाधान किया है।* इससे भी सिद्ध होता है कि पहले अध्यायका गीतासे घनिष्ठ सम्बन्ध है। महाभारतके भीष्मपर्वमें पचीसवें अध्यायसे ही भगवद्गीता प्रारम्भ होती है, जो कि भगवद्गीताका पहला अध्याय है।

३—गीता कुरुक्षेत्रमें महाभारत-युद्धारम्भके समय कही गयी। व्यूह बनाकर खड़े हुए कौरव और पाण्डव—दोनों दलोंके समक्ष अर्जुनकी इच्छाके अनुसार उसके सारथि बने हुए परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको यह उपदेश सुनाया था।

यदि कहें कि 'जब युद्धकी तैयारी थी, ऐसे अल्प समयमें गीताका सुनाया जाना सम्भव नहीं था, अनुमानतः भगवान्‌ने थोड़ी-सी बातें कही थीं जिनका श्रीव्यासजीने विस्तार कर दिया होगा।' तो इसका उत्तर यह है कि तबतक युद्ध प्रारम्भ नहीं हुआ था,

* देखें 'गीता-दर्पण'में 'गीतामें अर्जुनकी युक्तियाँ और उनका समाधान' शीर्षक लेख।

गीता सुनानेके बाद ही युद्ध आरम्भ हुआ है; क्योंकि महाभारतमें भीष्मपर्वके पचीसवेंसे बयालीसवें अध्यायतक गीता है, इसके बाद तैंतालीसवें अध्यायमें युधिष्ठिरने पितामह भीष्म आदिके पास जाकर उनको नमस्कार करके उनसे युद्धके लिये आज्ञा माँगी है एवं आज्ञा मिलनेपर यह घोषणा की है कि कोई वीर हमारे पक्षमें आना चाहे तो आ सकता है। यह सुनकर युयुत्सु डंका पीटता हुआ पाण्डवोंके पक्षमें आया भी है (महाभारत भीष्म ४३। ९४—१००)*। इसके बाद युद्ध आरम्भ हुआ है। इसलिये वहाँ गीता सुनानेमें समय अल्प नहीं था, पर्याप्त था।

४—कुछ लोग कहते हैं कि भगवान्ने अर्जुनसे युद्ध करानेके लिये ही गीता सुनायी थी। परंतु ऐसी बात नहीं है। भगवान्ने अर्जुनसे युद्ध नहीं कराया है, प्रत्युत उनको अपने कर्तव्यका ज्ञान कराया है। युद्ध तो अर्जुनको कर्तव्यरूपसे स्वतः प्राप्त हुआ था। अतः युद्धका विचार तो अर्जुनका खुदका ही था (गीता १। २०-२२)। वे स्वयं ही युद्धमें प्रवृत्त हुए थे, तभी वे भगवान्को निमन्त्रण देकर लाये थे। परन्तु शोक-मोहसे अभिभूत होनेके कारण वे युद्धसे विमुख हो रहे थे अर्थात् अपने कर्तव्यके पालनसे हट रहे थे। इसपर भगवान्ने कहा कि यह जो तू युद्ध नहीं करना चाहता, यह तेरा मोह है। अतः समयपर जो कर्तव्य स्वतः प्राप्त हुआ है, उसका त्याग करना उचित नहीं है।

कोई बद्रीनारायण जा रहा था; परन्तु रास्तेमें उसे दिशाभ्रम हो गया अर्थात् उसने दक्षिणको उत्तर और उत्तरको दक्षिण समझ

* भीष्मपर्वका यह तैंतालीसवाँ अध्याय गीताके सब अध्यायोंसे बड़ा (कुल १०९ श्लोकोंका) है।

लिया। अतः वह बद्रीनारायणकी तरफ न चलकर उलटा चलने लग गया। सामनेसे उसको एक आदमी मिल गया। उस आदमीने पूछा कि 'भाई! कहाँ जा रहे हो?' वह बोला—'बद्रीनारायण।' वह आदमी बोला कि 'भाई! बद्रीनारायण इधर नहीं है, उधर है। आप तो उलटे जा रहे हैं!' अतः वह आदमी उसको बद्रीनारायण भेजनेवाला नहीं है; किन्तु उसको दिशाका ज्ञान कराकर ठीक रास्ता बतानेवाला है। ऐसे ही भगवान्‌ने अर्जुनको अपने कर्तव्यका ज्ञान कराया है, युद्ध नहीं कराया है।

स्वजनोंको देखनेसे मोहवश अर्जुनके मनमें यह बात आयी थी कि मैं युद्ध नहीं करूँगा—'**न योत्स्ये**' (गीता २। ९), पर भगवान्‌का उपदेश सुननेपर अर्जुनने ऐसा नहीं कहा कि मैं युद्ध करूँगा, प्रत्युत ऐसा कहा कि मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा—'**करिष्ये वचनं तव**' (१८। ७३) अर्थात् अपने कर्तव्यका पालन करूँगा। अर्जुनके इन वचनोंसे यही सिद्ध होता है कि भगवान्‌ने अर्जुनको अपने वर्तमान कर्तव्यका ज्ञान कराया है।

वास्तवमें युद्ध होना अवश्यम्भावी था, क्योंकि सबकी आयु समाप्त हो चुकी थी। इसको कोई भी टाल नहीं सकता था। स्वयं भगवान्‌ने विश्वरूप-दर्शनके समय अर्जुनसे कहा है कि 'मैं बढ़ा हुआ काल हूँ और सबका संहार करनेके लिये यहाँ आया हूँ। अतः तेरे युद्ध किये बिना भी ये विपक्षमें खड़े योद्धालोग बचेंगे नहीं' (गीता ११। ३२)। इसलिये यह नरसंहार अवश्यम्भावी होनहार ही था*। यह नरसंहार अर्जुन युद्ध न करते, तब भी होता। अगर

---

* श्रीवेदव्यासजीने धृतराष्ट्रसे कहा है—

दिष्टमेतत्पुरा चैव नात्र शोचितुमर्हसि। न चैव शक्यं संयन्तुं यतो धर्मस्ततो जयः॥

(महा० भीष्म० २। १४)

अर्जुन युद्ध नहीं करते तो जिन्होंने माँकी आज्ञासे द्रौपदीके साथ अपनेसहित पाँचों भाइयोंका विवाह करना स्वीकार कर लिया था, वे युधिष्ठिर तो माँकी युद्ध करनेकी आज्ञासे अवश्य ही युद्ध करते*। भीमसेन भी युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते; क्योंकि उन्होंने कौरवोंको मारनेकी प्रतिज्ञा कर रखी थी†। द्रौपदीने तो यहाँतक कह दिया था कि अगर मेरे पति (पाण्डव) कौरवोंसे युद्ध नहीं करेंगे तो मेरे वृद्ध पिता (द्रुपद), भाई (धृष्टद्युम्न) और मेरे पाँचों पुत्र तथा अभिमन्यु कौरवोंसे युद्ध करेंगे।

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण कृपणौ सन्धिकामुकौ।
पिता मे योत्स्यते वृद्धः सह पुत्रैर्महारथैः॥
पञ्च चैव महावीर्याः पुत्रा मे मधुसूदन।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य योत्स्यन्ते कुरुभिः सह॥

(महा० उद्योग० ८२। ३७-३८)

'नरश्रेष्ठ! यह दैवका विधान है। इसे कोई मिटा नहीं सकता। अतः इसके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जहाँ धर्म है, वहीं विजय है।'

* माता कुन्तीकी आज्ञा थी—

युद्ध्यस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान्।
मा गमः क्षीणपुण्यस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम्॥

(महा० उद्योग० १३२। ३४)

'तुम राजधर्मके अनुसार युद्ध करो। कायर बनकर अपने बाप-दादोंका नाम मत डुबाओ और भाइयोंसहित पुण्यसे वञ्चित होकर पापमयी गतिको मत प्राप्त होओ।'

एतद् धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः॥

(महा उद्योग १३७। ९-१०)

'तुम अर्जुनसे तथा युद्धके लिये सदा उद्यत रहनेवाले भीमसे यह कहना कि जिस कार्यके लिये क्षत्रिय माता पुत्र उत्पन्न करती है, अब उसका समय आ गया है।'

† धार्तराष्ट्रान् रणे हत्वा मिषतां सर्वधन्विनाम्।
शमं गन्तास्मि नचिरात् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥

(महा० सभा० ७७। २२)

यदि अर्जुन युद्धभीरु होता, तब तो उसे युद्धमें प्रवृत्त करनेके लिये भगवान्‌का कथन उचित होता; किन्तु अर्जुन युद्धभीरु नहीं था, प्रत्युत धर्मभीरु था। वह मरनेसे नहीं, प्रत्युत मारनेसे डरता था। वह इस बातसे भयभीत था कि मेरेद्वारा कहीं अधर्म न हो जाय, जिससे मेरे कल्याणमें बाधा लग जाय! इसलिये भगवान्‌ने युद्ध करानेके लिये ही अर्जुनको गीता सुनायी—ऐसा मानना उचित नहीं है।

५—कई लोग कहते हैं कि गीतामें केवल कर्मयोगका ही वर्णन है। युद्धभीरु अर्जुनको युद्धरूप कर्ममें लगानेके लिये ही गीता सुनायी गयी थी। अतः गीता कर्मप्रधान है, ज्ञान और भक्तिके वर्णन तो उसमें प्रसङ्गोपात्त हैं। किंतु यह बात नहीं है। अर्जुन अपना वास्तविक निश्चित श्रेय (कल्याण) चाहता था। उसने स्वयं कहा है—

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे।

(गीता २।७ का तीसरा चरण)

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्।

(गीता ३।२ का उत्तरार्ध)

यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।

(गीता ५।१ का उत्तरार्ध)

इसके उत्तरमें भगवान्‌ने श्रेय (कल्याण) करनेवाले जो-जो साधन हो सकते हैं, उन सबको गीतामें कहा है। इसलिये गीता केवल कर्मयोगप्रधान नहीं है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग—तीनों ही दृष्टियोंसे किस प्रकार कर्म किये

'मैं सत्य कह रहा हूँ; शीघ्र ही वह समय आनेवाला है जब समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते मैं युद्धमें धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका वध करके शान्ति प्राप्त करूँगा।'

जायँ—यह बताते हुए कर्म करनेपर जोर जरूर है, पर केवल कर्मयोगपर नहीं; क्योंकि गीतामें परमात्माके साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण स्वरूप तथा ध्यानयोग, प्राणायाम आदि बहुत-से विषय आये हैं। यदि केवल युद्ध कराना ही अभिप्रेत होता तो प्राणायाम आदिके कथनकी आवश्यकता नहीं थी। इन सबका कथन होनेसे यह सिद्ध होता है कि गीतामें केवल कर्मयोगका वर्णन ही नहीं है, अन्य साधनोंका भी वर्णन है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।

(गीता ४। ३२का पूर्वार्ध)

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥

(गीता १३। ४)

तथा गीतामें एकान्तमें करनेके और कार्यकालमें करनेके—दोनों तरहके साधन बताये गये हैं। जैसे—

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥

(गीता ६। १०)

विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।

(गीता १३। १०का पूर्वार्ध)

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।

(गीता १८। ५२का पूर्वार्ध)

ये एकान्तके साधन हैं। यदि केवल युद्ध कराना ही अभीष्ट होता तो एकान्तके साधन बतानेकी आवश्यकता नहीं थी। अतएव

भगवान्का न तो युद्धमें लगानेमें तात्पर्य है, न कर्म करानेमें ही। तात्पर्य है जीवमात्रके कल्याणमें। उसीके लिये अनेक साधन बतलाये हैं। अतः गीता हर एक परिस्थितिमें अपना कल्याण करनेकी अद्भुत कला सिखाती है।

६—यदि कहें कि 'भगवान् तो प्रायः हरदम ही अर्जुनके साथ रहते थे। गीतामें अर्जुन कहते हैं—

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥

(११।४२)

भागवतमें भी कहा है—

शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादि-
ष्वैक्याद् वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः।
सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं
सेहे महान् महितया कुमतेरघं मे॥

(१।१५।१९)

प्रायः सदा साथ रहनेवालेको किसी समय भी उपदेश नहीं किया। अब युद्धका समय ही कौन-सा एकान्त समय था कि गीताका उपदेश उस समय किया।' तो इसका उत्तर यह है कि पहले अर्जुन इस प्रकार घबराकर कभी भगवान्के उन्मुख नहीं हुए थे तथा इस प्रकार शरण होकर कल्याणकी जिज्ञासा नहीं की थी। उपदेश तभी दिया जाता है और तभी सार्थक होता है जब श्रोता पात्र होकर उपदेशके लिये उन्मुख हो जाता है।

७—गीता-ग्रन्थकी रचना विक्रम-संवत्से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्वकी मानी जाती है। यह मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीको कही गयी; इसलिये इसी दिन 'गीता-जयन्ती'का उत्सव मनाया जाता है।

८—गीता साक्षात् भगवान्का हृदय है। स्वयं भगवान्ने कहा है—'**गीता मे हृदयं पार्थ।**'

९—गीता एक सार्वभौम धर्म-ग्रन्थ है। सभी धर्म, सम्प्रदाय और मत-मतान्तरके लोग इसका आदर करते हैं; क्योंकि इसमें किसीके धर्मका खण्डन नहीं है। इसलिये प्रायः सभी प्रमुख सम्प्रदायोंकी इसपर टीकाएँ मिलती हैं।

१०—गीता सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार है। यही एक छोटा-सा ऐसा ग्रन्थरत्न है, जिसमें संक्षेपतः धर्म, कर्म, भक्ति और ज्ञान-विज्ञानका तत्त्व-सार पूर्णतया संनिहित है। गीता अपने-अपने वर्ण, आश्रम तथा धर्मको कर्तव्य समझकर निष्कामभावसे उसका अनुष्ठान करनेपर उसीके द्वारा भगवत्प्राप्ति बतलाती है और उसमें परिवर्तनकी जरूरत नहीं मानती, किंतु परिमार्जनकी जरूरत मानती है।

११—वैदिक धर्मावलम्बी भारतवासियोंके आत्मोद्धारके लिये प्रस्थानत्रय कल्याणके राजपथ माने जाते हैं। इन तीनोंपर श्रीशंकर, श्रीरामानुज, श्रीवल्लभ, श्रीमध्व और श्रीनिम्बार्कने टीकाएँ लिखी हैं, इसीसे आस्तिक लोग उनका आचार्यत्व मानकर उन्हें आदर देते हैं। ये तीन प्रस्थान हैं—१. वैदिक प्रस्थान, जिसे 'उपनिषद्' कहते हैं, २.दार्शनिक प्रस्थान, जिसे 'ब्रह्मसूत्र' कहते हैं, ३.स्मार्त प्रस्थान, जिसे भगवद्गीता कहते हैं, जो कि कौरव-पाण्डवोंके सच्चे इतिहास-ग्रन्थ महाभारतके अन्तर्गत है। यह श्लोकोंके रूपमें है और भगवान्की वाणी होनेके कारण वेद-ऋचाओंके समान मन्त्ररूप है। सरल होनेपर भी आशय गम्भीर होनेसे यह सूत्ररूपसे है। परंतु भगवान्ने कृपा करके इसे इतिहासमें कहा है, इसलिये इसके अधिकारी स्त्री-शूद्र आदि सभी हो सकते हैं। वेदोंके अधिकारी सभी नहीं होते। दर्शनोंके अधिकारी भी पण्डित विद्वान् ही हो सकते हैं। किंतु इसके सभी

मनुष्य अधिकारी हो सकते हैं (गीता ९। ३०—३३)। इस प्रकार गीता वेदों और दर्शनोंके समान है।

१२—सारे शास्त्र वेदोंके सिद्धान्तको लेकर ही बने हैं। वेद भगवान्‌के निःश्वास हैं—'**यस्य निःश्वसितं वेदाः।**' श्वास अप्रयत्न सिद्ध होता है। इसी प्रकार गीतामें भगवान्‌ने अपने ऐकान्तिक प्रिय मित्र और भक्त अर्जुनको अपने हृदयकी रहस्यमयी गुप्त बातें खोल-खोलकर बतायी हैं और कहा है कि ये हर एक व्यक्तिको बतलानेकी नहीं है। इसलिये इसे वेदोंसे भी बढ़कर कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

१३—कुछ लोग कहते हैं कि भगवान्‌ने गीतामें आत्मश्लाघा—अपनी बड़ाई की है। परंतु यह बात सर्वथा गलत है। जहाँ-जहाँ भगवान्‌ने अपनी भगवत्ता प्रकट की है, वहाँ-वहाँ उन्होंने रहस्य (४।३), गुह्यतर (१८।६३), गुह्यतम (९।१, १५।२०), सर्वगुह्यतम (१८। ६४) आदि शब्दोंसे उस विषयको अत्यन्त गोपनीय और किसीको न सुनानेके लिये कहा है तथा अर्जुनको अनघ, अनसूयु बतलाकर '**कुरुष्व**' (९।२७), '**भजस्व**' (९।३३) आदि—यों आत्मनेपदका प्रयोग करते हुए आज्ञा दी है। जहाँ उभयपदी धातुमें आत्मनेपद होता है वहाँ क्रियाका फल कर्ताको मिलता है—'**कर्त्रभिप्राये क्रियाफले आत्मनेपदम्।**' जब सर्वसमर्पणका फल समर्पकको ही मिलता है, तब वह अपनी प्रशंसा कहाँ रही? भगवान्‌ने तो अर्जुनके कल्याणके लिये ही यह कहा है कि तू ऐसा करेगा तो तेरा भला होगा। वह भी इसलिये कहा कि अर्जुन अनघ (३। ३; १४। ६; १५। २०) और अनसूयु (९। १) था। यदि कोई पापी और दोषदृष्टिवाला इसे सुनता तो उसका अन्तःकरण मलिन होनेके कारण उसपर असर अच्छा नहीं पड़ता। अघ—पापोंके कारण और असूया दोष—अशुद्ध अन्तःकरणके कारण ही ऐसी शंका हुआ

करती है। अतः अपना भला चाहनेवाले मनुष्यको श्रीभगवान्‌के वचनोंमें आत्मश्लाघा नहीं माननी चाहिये।

१४—'**गीता सुगीता कर्तव्या**'—परम पुरुषोत्तम, देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निस्सृत समस्त उपनिषत्साररूप अद्वितीय शास्त्र—श्रीमद्भगवद्गीताको सुगीता करना चाहिये—उसका भलीभाँति गान करना चाहिये अर्थात् उसके भावोंको हृदयङ्गम करके अपने जीवनमें उतारना चाहिये।

१५—गीता एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है। इसका प्रचारक भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है। भगवान्‌ने अठारहवें अध्यायके उनहत्तरवें श्लोकमें स्वयं कहा है—'उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा पृथ्वीभरमें उसके समान मेरा प्रियतर दूसरा कोई होगा भी नहीं।'

१६—गीता

464 Gita Gyan_Section_9_Front

464 Gita Gyan_Section_9_Back

समाप्तिमगमदयं श्रीमद्भगवद्गीताश्लोकान्तर्गतपदानां वर्णानुक्रम:।

श्रीमद्भगवद्गीतान्तर्गत श्लोकोंकी अकारादिवर्णानुक्रम-सूची

पृष्ठ ११५ पर दिये गीता-सम्बन्धी प्रश्नोंके उत्तर

१	इसी पुस्तकमें तालिका देखें
२	इसी पुस्तकमें तालिका देखें
३	सात सौ
४	देखें—गीता-दर्पण-८६
५	इसी पुस्तकमें तालिका देखें
६	इसी पुस्तकमें तालिका देखें
७	देखें—साधक-संजीवनी
८	पन्द्रहवाँ अध्याय
९	१०। १५ में पाँच सम्बोधन
१०	१८। ६६
११	२। ११ से १८। ६६
१२	१। २० से १८। ७४
१३	देखें—गीता-दर्पण-३७
१४	४। २१
१५	१३। १७, १५। १५, १८। ६१
१६	१८। १४
१७	११। ६
१८	देखें—गीता-दर्पण-२५
१९	देखें—गीता-दर्पण-५८
२०	१६। १—३ में दैवी सम्पदा और १६। ४, ७—२३ में आसुरी सम्पदाका वर्णन आया है।
२१	३। १४-१५
२२	देखें—गीता-दर्पण-५१
२३	४। ९, १३-१४
२४	६। २४—२८ में निर्गुण-निराकार-का ध्यान और ६। १४-१५ में सगुण-साकारका ध्यान बताया है।
२५	८। १४ और ७। ३
२६	६। ३८—४५
२७	७। ८—१२ में सत्रह, ९। १६—१९ में सैंतीस, १०। ४-६, २०—३९ में एक सौ सत्ताईस और १५। १२—१५ में तेरह (कुल एक सौ चौरानबे) विभूतियोंका वर्णन हुआ है।
२८	देखें—गीता-दर्पण-२४
२९	देखें—गीता-दर्पण-५७
३०	१३। २९ में प्रकृतिको, ३। २७-२८, १४। १९, २३ में गुणोंको, ५। ९ में इन्द्रियोंको और ५। १४ में स्वभावको कर्ता बताया है।
३१	१५। १—३
३२	देखें—गीता-दर्पण-६७
३३	३। ४१—४३
३४	स्वचक्षु अर्थात् चर्मचक्षु (११। ८), दिव्यचक्षु (११। ८) और ज्ञानचक्षु (१३। ३४, १५। १०)
३५	देखें—गीता-दर्पण-७६
३६	११। १५—१८ में देवरूपका, ११। १९—२२ में उग्ररूपका और ११। २३—३०में अत्युग्ररूपका वर्णन आया है।
३७	२। ४७-४८, ६। १—४
३८	१३। ७—११
३९	११। ५५, १६। १—३

४०	२।५५—७२, ६।७—९
४१	१४।२२—२५
४२	१२।१३—१९
४३	४।३८, ५।४-५
४४	२।७१-७२ (कर्मयोग), ५।२४—२६ (ज्ञानयोग), ६।१४-१५ (भक्तियोग)
४५	४।२३ (कर्मयोग), ४।३६-३७ (ज्ञानयोग), १८।६६ (भक्तियोग)
४६	२।७१, २।१२ (कर्मयोग), ४।३९ (ज्ञानयोग), ६।१५, ९।३१ (भक्तियोग)
४७	२।७१ (कर्मयोग), १८।५३ (ज्ञानयोग), १२।१३ (भक्तियोग)
४८	५।३, ६।१
४९	७।१३
५०	१३।२२, १५।८
५१	४।२१, ५।७, ६।१०, ३२, १८।४९
५२	५।१०, १०।१२
५३	२।४६
५४	वैशम्पायनके वचन (जनमेजयके प्रति)
५५	५।२
५६	६।४७, १२।२
५७	९।१४, २६, १७।१४
५८	७।८, ८।१३-१४, ९।१४, १०।२५, १७।२३
५९	१३।१०, १४।२६
६०	१८।५४
६१	४।२८, १७।१५, १८।७०
६२	६।१४, ८।११, १७।१४
६३	१०।५, १३।७, १६।२, १७।१४
६४	देखें—गीता-दर्पण—४२
६५	९।१६ में आठ बार